तृतीय अध्याय
'हानूश' और 'कबिरा खड़ा बजार में' की यथार्थता

तृतीय अध्याय

"हानूश" और "कबिरा खड़ा बजार में" की यथार्थता

प्रास्ताविक :-

यथार्थवाद समाजवावदी कला-आंदोलन तथा चिंतन की एक नई मंजिल है। मानव विकास का प्रमुख आयाम है। यथार्थवाद के नाम से ही स्पष्ट है कि उसका प्रमुख उद्देश्य समाजवादी समाज के उद्देश्य, गुण एंव उसकी वर्तमान गतविधियों का मूल्यांकन करना है। इसी कारण यथार्थवाद आधुनिक विज्ञान युग की देन है। नाटक से यथार्थ का गहरा संबंध है। यथार्थवाद मानव जाती की वेदनाओं को चित्रित करता है। उसकी वेदनाओं को आवाज देने का काम करता है। ऐसे यथार्थवाद को देखते समय हमें यथार्थवाद से संबंधित निम्न बातों को देखना अनिवार्य हो जाता है।

अ) यथार्थवाद का उद्‌भव, विकास, महत्त्व

ब) यथार्थवाद का स्वरुप

क) यथार्थवाद की परिभाषाये (भारतीय और पाश्चात्य विद्‌वान)

ड) यथार्थवाद के भेद।

अ) यथार्थवाद का उद्‌भव, विकास, महत्त्व :-

यथार्थवाद का जन्म यथार्थवादपूर्व दर्शन और कलाचिंतन के प्रतिक्रिया के विराधे में हुआ है। यथार्थवाद का खुद का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। यथार्थवाद साहित्य में प्रचलित आदर्शवाद के विरोध की प्रतिक्रिया भी माना जा सकता है। साहित्य और रचना की प्रधान, प्रेरक दृष्टि और एक सशक्त आंदोलन के रूप में यथार्थवाद का जन्म और विकास फ्रान्स क्रांति के पश्चात हुआ है। भारत में अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी शिक्षा के बढते हुए महत्त्व के कारण हिंदी के साहित्यकार युरोपीय साहित्य के सम्पर्क में आए। पाश्चात्य साहित्यकारों ने अपने साहित्य में यथार्थ का सुंदर एंव सजीव चित्रण किया है। इनमें तुर्गनेव डोस्टावस्की तथा गोर्की आदि महत्त्वपूर्ण साहित्यकार हैं। इनके साहित्य का प्रभाव सारे

विश्वसाहित्य पर पड़ा है। हिंदी के साहित्य में भी अनेक साहित्यकारों ने यथार्थ का चित्रण अपने साहित्य में किया है। विशेषत: नाटक, उपन्यास साहित्य में इसका विशेष प्रभाव दिखायी देता है।

ज्ञान की प्रक्रिया के मध्य वस्तुओं का स्वरुप परिवर्तित हो जाता है अथवा सम्पूर्ण विश्व को अनुभवात्मक या अनुभवरुप मानना चाहिए, इस प्रत्ययवादी दार्शनिक मान्यता के विरोध में, पाश्चात्य दर्शन के क्षेत्रो में यथार्थवादी विचारण का उद्भव हुआ। ‘‘इस मान्यता के विपरित यथार्थवादी दार्शनिकों की स्थापना यह थी कि ज्ञान के विषयों की यथार्थता अथवा वास्तविकता को स्वतंत्र रखा जाय, अर्थात ‘‘ज्ञेय पदार्थों की सत्ता ज्ञाना से स्वतंत्र है।’’[1] यथार्थवाद साहित्य में प्रचलित आदर्शवाद के विरोध की प्रतिक्रिया भी माना जा सकता है। मानव जीवन के सम्बन्धहीनता के विरोध में यथार्थवाद का जन्म और विकास हुआ है। यथार्थवाद स्वच्छंदतावाद की रहस्यात्मकता, आध्यात्मिकता, काल्पनिकता, कृत्रिमता, अस्पष्अता, भावप्रवणता को स्पष्ट करता है।

‘‘यथार्थवाद की दृष्टि तथ्यात्मक है। तथ्य विज्ञान पर आधारित होते हैं और इन्हीं तथ्यों का अन्वेषण करना यथार्थवाद की प्रमुख प्रवृत्ति होती है।’’[2] डारविन तथा न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों ने भी यथार्थवाद के स्वतंत्र अस्तित्त्व और विचारधारा को बनाने में औद्योगीकरण से उत्पन्न युंगान्तकारी आविष्कार स्थापित किये। यथार्थवाद में कार्ल मार्क्स तथा एंगेल्स जैसे समाजवाद्यिों ने भी क्रांतिकारी दार्शनिकों की प्रमुख भूमिका निभाई है। इनके चिन्तन तथा विचारों के आधार पर साहित्य में यथार्थवाद का उदय हुआ है। मानव का शोषक-शोषित वर्गभेद समाप्त करने के लिए श्रमिक वर्ग के हाथ में सत्ता आवश्यक हैं और सत्ता प्राप्त करने के लिए क्रांति अनिवार्य है। कार्ल मार्क्स और एंगेल्स के इन विचारों से यथार्थवाद को ठोस आधार प्राप्त हुआ है। ‘‘यथार्थवाद समाज के उच्चवर्ग के साथ ही मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय व्यक्तियों का भी चित्रण करता है। लेकिन इस चित्रण में निम्न और मध्यवर्ग का चित्रण प्रधान रूप से करता है।’’[3] सेंट साइमन ने अपनी कृतियों के माध्यम से वैज्ञानिक दृष्टिकोण की संगति में दु:खी जनों के जीवन का चित्रण किया और उनके दु:ख निवारण की आवश्यकता बताई। फायरबाख

नें भी पूर्ववर्ती विचारधाराओं को इतिहास की वस्तु बनाकर यथार्थवादी चिंतन को एक सशक्त आधारभूमि प्रदान की। इन्हीं की बातों से पता चलता है कि "यथार्थवाद स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर उन्मुख रहता है और परिवर्तनशील परिस्थितियों तथा वैचारिक दृष्टिकोणों से प्रेरणा ग्रहण कर कला को नवीन वातावरण में गतिशील करना है।"[4] यथार्थवादी साहित्यकार का दृष्टिकोण भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक होता है। समाज की यथार्थ दुर्बलता, विषमता, असंगति और वेदना का चित्रण इसमें अधिक होता है। "इसकी शैली बौद्धिक एवं वैज्ञानिक अधिक है। इसका अन्तिम लक्ष्य मानव को मानव बनाना होता है।"[5] यथार्थवाद मनुष्य के संघर्ष का मूल कारण "अर्थ" को मानता है जिससे उसका मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य स्पष्ट होता है।

यथार्थवाद सत्य की खोज से उद्भूत प्रवृत्ति है, वह सत्यानुभूति से प्रेरित चित्रण पर बल देता है। वह मानव और समाज का पूर्ण रूप से चित्रण करता है। "मानव जीवन की कुण्ठाएँ वर्जनाएँ एवं असंतोषप्रद स्थितियों की भयंकरता से यथार्थवाद मुख नहीं मोडता, उनका साहस के साथ चित्रण करता है।"[6] यथार्थवाद का मुख्य आधार यथार्थ जीवन के प्रति वस्तुपरक दृष्टि रखना है। फ्रायड ने भी यह सिद्ध किया कि मनुष्य जीवन का नेतृत्व उसकी यौनशक्ति ही करती है। मनुष्य की यौन संतुष्टि के बिना उसका विकास असंभव है। फ्रायड के इस विश्लेषण का प्रभाव भी यथार्थवाद पर पड़ा है। "डार्विन ने मानव के विकास का निरूपण करते हुए मनुष्य को पशु की ही विकसित नस्ल स्वीकार किया।"[7] इसी कारण उन्नीसवी शताब्दी के विज्ञान ने मनुष्य की जीवन सम्बन्धी धारणा और अन्य विचारधारा में जो क्रांतिकारी परिवर्तन किया है उसमें डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त को प्रमुख स्थान है। जिससे यथार्थवाद को काफी शक्ति मिलती है। अत: कहा जा सकता है कि यथार्थवाद मानव जाति के दु:ख, अभाव, पतन और वेदना तथा उसकी समस्याओं का चित्रण करता है। इसलिए यथार्थवाद का महत्त्व अनन्यसाधारण हो जाता है।

ब) यथार्थवाद का रूप :-

सम्पूर्ण मानव-व्यक्तित्त्व का उद्‌घाटन ही यथार्थवाद का साध्य है। इसमें कल्पना को स्थान नहीं है। ऐसे यथार्थवाद को देखते समय हमें यथार्थवाद के रूपों को भी देखना अनिवार्य है। यथार्थवाद के रूपों को देखते समय यथार्थ, सत्य और यथार्थ, यथार्थ और आदर्श, आदर्शवाद और यथार्थवाद, यथार्थ और कल्पना, यथार्थ और तथ्य, यथार्थ और यथार्थवाद में भेद, यथार्थ और विरूपता, यथार्थवाद और चित्रण, इन तत्त्वों को समझना आवश्यक है।

यथार्थ :-

प्रत्यक्ष ज्ञान को यथार्थ कहते हैं। लेकिन ''यथार्थ का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है - ठीक, वाजिब, उचित, जैसा होना चाहिए वैसा। यथार्थ का संधि विच्छेद होता है - यथा + अर्थ। यहाँ यथा का अर्थ 'जैसा' और अर्थ का मंतव्य 'वस्तु' माना गया है।''[8] बाबू गुलाबराय के शब्दों में ''यथार्थ वह है जो नित्यप्रति हमारे सामने घटता है।''[9] यथार्थ में वस्तु सत्य को उपस्थित किया जाता है। यथार्थ के आधारपर ही यथार्थवाद का जन्म और विकास हुआ है। यथार्थवाद में स्थित यथार्थ से ही उसे महत्व प्राप्त हुआ है।

यथार्थ और सत्य :-

यथार्थ में सत्य का महत्वपूर्ण अंश रहता है लेकिन वह संपूर्ण सत्य नहीं है। किसी वस्तु के सत्य को देखते समय हमें उसके अन्तर्बाह्य स्वरूप को देखना आवश्यक है। उसके अतीत, वर्तमान और भविष्य की दृष्टि से देखने पर हमें सत्य मिल सकता है। यथार्थ में केवल व्यावहारिक पहलू का ही मूल्यांकन होता है। अत: यथार्थ में पूर्ण सत्य न होने पर भी यथार्थवादी साहित्यकारों ने यथार्थ में सत्य के पहलुओं की उपेक्षा भी नहीं की है।

यथार्थ और आदर्श :-

''यथार्थ बताता है कि यह वस्तु कैसी है और आदर्श बताता है कि यह वस्तु कैसी हो। यथार्थ गुण-अवगुण में किसी का त्याग नहीं करता, आदर्श गुण और सौंदर्य को ग्रहण कर लेता है और अवगुण को छोड देता है।''[10] यथार्थ की नजर सिर्फ वस्तु के वर्तमान पर ही होती है। आदर्श की नजर तो भविष्य पर टिकी होती है जो आदर्श रूप में कल्पना करता है। साथ ही साथ आदर्श, यथार्थ को देखकर ही आदर्श की कल्पना को देखता है। और आदर्श की स्थापना करने में सफल होता है। इसीलिए आदर्श और यथार्थ एक दूसरे के निकट लगते हैं लेकिन दोनों परस्पर विरोधी तत्त्व है।

यथार्थवाद और आदर्शवाद :-

यथार्थ से यथार्थवाद की और आदर्श से आदर्शवाद की स्थापना हो चुकी है। लेकिन यथार्थवाद और आदर्शवाद परस्परविरोधी विचारधाराएँ हैं। ''यथार्थवाद वस्तु के स्वतंत्र अस्तित्व को मान्यता देता हैं जबकी आदर्शवाद, वस्तु में व्यक्त सत्य को न मानकर उस व्यक्त सत्य के परे उपस्थित उसकी भावात्मक सत्ता को वास्तविक मानता है।''[11] यथार्थवाद वर्तमान को देखता है तो आदर्शवाद भविष्य की ओर देखता रहता है। संसार और जीवन कैसा होना चाहिए इसपर आदर्शवाद सोचता रहता है। यथार्थवाद आदर्शवाद का मूल आधार है। अच्छे पक्ष को स्वीकृति केवल आदर्शवाद ही देता है। आदर्शवाद अपने आदर्श भविष्य में प्राप्त करने का संदेश देता है। लेकिन यथार्थवाद कोई संदेश नहीं देता वह तो व्यक्तियों की आँखें खोल देता है।

यथार्थ और कल्पना :-

स्वच्छंदतावाद में कल्पना तत्व को अनन्यसाधारण महत्व है। स्वच्छंदतावादी लेखकों ने कल्पना को आधार बनाकर धरती, पाताल और आकाश सब जगह मुक्त और स्वच्छंद विचरण किया और जीवन के सत्यों को प्रकट करने का कार्य भी किया है। उन्होंने कल्पना को केवल माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया है। यथार्थवाद कल्पना तत्व के बिना अपना साहित्यिक और कलात्मक रूप स्थिर नहीं रख

सकता। इस प्रकार हमें पता चलता है कि यथार्थवाद में कल्पनातत्व का निश्चित हाथ होता है। लेकिन साहित्यकार की कृति में वह प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाई देती। यथार्थवाद में यथार्थ वस्तुओं के अभाव में कार्य करनेवाली कल्पना को अस्वीकृत किया जाता है अथवा ऐसी अस्वीकृत कल्पना को तर्कबुद्धि से उच्चतर कोटी की मानसिक शाक्ति माना गया है। अतः इससे पता चलता है कि यथार्थवाद और कल्पना तत्व का परस्पर निश्चित रूप से सम्बन्ध है।

यथार्थ और तथ्य :-

वास्तविकता का सत्य चित्रण यथार्थवाद की आधारभूत विशेषता है, वह तथ्यों का आग्रही भी है। "वास्तविकता के सत्य चित्रण में उसका जोर इस बात पर रहता है कि वास्तविकता तथ्यपरक न होकर कला की अपनी आवश्यकतओं की पूर्ति करते हुए कृति में अभिव्यक्त हो।"[12] लेकिन बुद्धिवादी लोग यथार्थवाद पर आरोप लगाते हैं। उनका कहना हैं कि यथार्थवादी रचनाकार अपनी कृतियों में बाह्य वास्तविकता को ज्यो का त्यों उतारने की चेष्टा करते है। यथार्थवादी सिर्फ तथ्यपरक हैं और तथ्यों के संग्रह पर विश्वास करते हैं। रचनाकार की उसमें कोई सक्रिय भूमिका का यो नहीं होता। मतलब यथार्थवाद में वस्तु के बाह्य स्वरूप का यथातथ्य चित्रण किया है। लेकिन उनका यह आरोप गलत है। यथार्थवादी रचना वास्तविकता का यथातथ्य रूप न होकर कलाकार की अपनी सृष्टि होती है। यथार्थवादी में वस्तु का सिर्फ यथातथ्य वर्णन नहीं होता है, उसमें लेखक की संवेदना, दृष्टि और मनःस्थिति होती है।

यथार्थ और विरूपता :-

यथार्थववाद के सम्बन्ध में यह भ्रांति है कि वह जीवन के कुरूप, घिनौने तथा बीभत्सता का ही चित्रण करता है। यह भ्रांति केवल प्रकृतिवादी साहित्य के कारण निर्माण हो चुकी है। यथार्थवादी साहित्य में निश्चित रूप से समाज तथा जीवन के कुरूप तथा घिनौने पक्ष को चित्रित किया गया है। जीवन में सबकुछ श्रेष्ठ और सुंदर ही नहीं होता, कुरूप और घिनौना भी होता है यदि वह सचमुच

मानव-जीवन है। यही कारण है कि भारतीय आचार्योंने साहित्य के नवरसों में बीभत्स की गणना की है। 'यथार्थवादी रचनाकारों ने मानवी विकृति के साथ मानवीय आकांक्षा का रूप भी उभारा है। इसलिए ऐसा कहना कि यथार्थवादी कृतित्व में सिर्फ मानव जीवन के अथवा मनुष्य के कुरूप, घिनौने या विरूप पक्ष को ही प्रधानता है, यह कहना गलत होगा। यह प्रकृतिवाद का सत्य हो सकता है, यथार्थवाद का नहीं। यथार्थवादी रचनाकारों ने जीवन के कुरूप, बीभत्स और घृणित पक्ष की आलोचना की है। यथार्थवादी साहित्य, मनुष्य को निराशावादी और नियतिवादी भी नहीं बनाता। वह मनुष्य को उसके परिवेश से परिचित करता है। समाज में घटित विरूपता के प्रति सजग करता है।

अत: कहा जा सकता है कि यथार्थवादी का सत्य लौकिक सत्य होता है। यथार्थवाद की शैली बौद्धिक एवं वैज्ञानिक अधिक है। इसका अन्तिम लक्ष्य वस्तुजगत की स्थितियों को समक्ष रखते हुए सुन्दर से सुन्दरतर स्थितियों की ओर समाज को उन्मुख करना है।

यथार्थवाद परिभाषाये (भारतीय और पाश्चात्य विद्वान) :-

यथार्थवाद का जन्म युरोप की भूमि पर हुआ है। वही उसका विकास भी हुआ है। इसलिए यथार्थवाद सर्वप्रथम पाश्चात्य विचारधारा है। यथार्थवाद के संदर्भ में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने और साहित्यकारों ने अपने अपने विचार प्रकट किए हैं।

*** यथार्थवाद के संदर्भ में भारतीय विद्वानों के विचार :-**

1) पं. नन्ददुलारे वाजपेयी -

''यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक सत्ता का समर्थक है। वह व्यष्टि की अपेक्षा समाष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तुजगत से है।''[13]

2) जयशंकर प्रसाद -

जयशंकर प्रसादजी का कहना है कि ''व्यापक दु:ख संकलित मानवता को स्पर्श करनेवाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है। इस यथार्थवादिता की दिशा में अभाव, पतन और वेदना के अंश

प्रचूरता से होते हैं। ---- यथार्थवादी पतन और स्खलन का भी मूल्यांकन करता है। वेदना से प्रेरित होकर जनसाधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्यकार करता है। यथार्थवाद का मूल भाव है, वेदना। यथार्थवाद क्षुद्रों का ही नहीं महानों का भी है।''[14]

3) आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी -

आ. द्विवेदी जी के अनुसार वास्तविकता की निष्कपट अभिव्यक्ति ही यथार्थवाद का लक्ष्य है। इस संदर्भ में वे लिखते है - ''यथार्थवाद शब्द बहुत फहमी का शिकार बन गया है। साहित्य में यथार्थवाद का प्रयोग नये सिरे से होने लगा है। यह अंग्रेजी शब्द 'रियलिज्म' के तौर पर लिया गया है। यथार्थवाद का मूल सिद्धांत वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना है। न तो उसका कल्पना के द्वारा विचित्र रंगों में अनुरंजित करना और न किसी धार्मिक या नैतिक आदर्श के लिए काँट-छाँटकर उपस्थित करना है।''[15]

4) प्रेमचंद -

प्रेमचंद जी ने यथार्थवादी चित्रण के सम्बन्ध में कहा है कि - ''यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने यथार्थ रूप से नग्न में रख देता है। उसे हम से कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता खुबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवनलीला समाप्त करते हैं।''[16] यथार्थवाद निराशावादी बनने का कारण बताते समय वे कहते हैं, ''यथार्थवादी अनुभव की बेडियाँ में जकड़ा होता है और चूँकि संसार में बूरे चरित्रों की प्रधानता है - यहाँ तक उज्वल से उज्वल चरित्र में भी कुछ न कुछ दाग-धब्बे रहता है। इसलिए यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रुरताओं का नग्न चित्र होता है। और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।''[17] प्रेमचंदजी ने आदर्श और यथार्थ के सम्बन्ध में समन्वयवादी दृष्टिकोण रखते हुए लिखा है कि, ''जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो, उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श सजीव बनाने ही के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए।''[18]

भारतीय विद्वानों के अनुसार यथार्थवाद का सम्बन्ध प्रत्यक्ष भौतिक जगत् से है। यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक सत्ता का समर्थक है। यथार्थवावदी मनुष्य की वेदना और समस्याओं का चित्रण करता है। यथार्थवाद में अधिकतर मनुष्य के कुचरित्र का चित्रण होता है, यथार्थवादी साहित्यकार अपने अनुभव से मनुष्य का यथार्थरूप में चित्रण करता है।

✽ यथार्थवाद के संदर्भ में पाश्चात्य विद्वानों के विचार :-

यथार्थवाद के संदर्भ में पाश्चात्य विद्वानों के विचार देखते समय हम कजामियाँ, हावेल, फ्लावेयर, हैवर्ड फास्ट, आर. एल. स्टीवेन्सन, एंगेल्स, जोला, जार्ज ल्युकाक्स एमिल फागे इनके विचार देखेंगे।

1) कजामियाँ -

कजामियाँ का कहना है, ''यथार्थवाद साहित्य में एक शैली नहीं बल्कि एक विचारधारा है।''[19] कजामियाँ ने यथार्थवाद एक विचारधारा मानी है।

2) हावेल -

हावेल ने सामान्य मनुष्य के जीवन को ध्यान में रखते हुए कहा है ''सामान्य जीवन के यथार्थ को महत्व देते हुए नैतिक जीवन की आज्ञा को अनुचित माना है।''[20]

3) फ्लावेयर -

''फ्लावेयर वस्तुगत दृष्टिकोण और जीवन के सामान्य पक्षों में महत्वपूर्ण उद्घाटन को यथार्थवाद की विशिष्टता मानता है।''[21]

4) हैवर्ड फास्ट -

''यथार्थवाद वह साहित्यिक संश्लेषण है जो चुनाव तथा रचना के माध्यम से उन्होंने अपने वास्तविक विचारों को समुन्नत रूप में पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता है।''[22]

5) आर. एल. स्टीवेन्सन -

"यथार्थवाद का प्रश्न साहित्य में मुख्यत: सत्य से अल्पांश भी सम्बन्ध नहीं रखता। बल्कि उसका सम्बन्ध रचना की कलात्मक शैली मात्र से है।"[23] स्टीवेन्सन ने यथार्थवाद में कलात्मक शैली को प्रधान माना है।

6) एंगेल्स :-

एंगेल्स ने यथार्थवाद के प्रस्तुतिकरण पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार "यथार्थवाद का आशय यह है कि लेखक विवरणों और ब्योंरो के सत्य प्रस्तुतिकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करें।"[24] यथार्थ को एंगेल्स ने सच्चाई के साथ चित्रित्र करना कहा है।

7) जोला -

जोला ने प्रकृतिवादी और शरीरविज्ञान सम्बन्धी क्रियाओं को महत्त्व देते हुए यह कथन किया है कि - "मानव का सामान्य तत्वों की भाँति अध्ययन करके उसकी प्रतिक्रिया को नोट करो। मेरे लिए प्रकृतिवाद एवं शरीर-विज्ञान सम्बन्धी क्रियाओं का विशेष महत्व है। मैं सिद्धान्त निर्माण के स्थान पर इन्ही नियमों का अनुगमन करना चाहता हूँ। मैं एक वैज्ञानिक की तरह तथ्यों का रहस्योद्घाटन करते समय वस्तुस्थिति को अभिज्ञान से संतुष्ट हूँ।"[25]

8) जार्ज ल्यूकाक्स -

जार्ज ल्यूकाक्स के विचारों को स्पष्ट करते हुए डॉ. त्रिभुवन सिंह लिखते है - "जार्ज ल्यूकाक्स ने यथार्थवाद के अद्भूत संश्लेषण क्षमता को महत्त्व दिया है, जिसमें सामान्य एवं विशिष्ट तथा चरित्र एवं परिस्थितियाँ सम्बध्द हो जाये। चरित्र की विशिष्टता वैयक्तिक विशिष्टता की मुखोपेक्षी नहीं है, चरित्र की विशिष्टता के लिए उसमें सभी ऐसे मानवीय एवं सामाजिक निर्णायक तत्त्वों का पूर्ण विकसित रूप में प्रस्तुत रहना आवश्यक है कि उनके आधार पर सभी अन्तर्निहित सम्भावनाओं का

स्पष्टीकरण हो सके। जार्ज ल्यूकाक्स के विचार से सच्चे यथार्थवादी साहित्य की यह प्रमुख विशेषता है कि लेखक बिना किसी भय अथवा पक्षपात के ईमानदारी के साथ जो कुछ भी अपने आसपास देखता है उसका चित्रण करे।''[26]

9) एमिल फागे -

''बाल्जक'' पर लिखि अपनी किताब में ऐमिल फागे लिखते हैं, ''यथार्थवादी कला का तात्पर्य है जीवन और जगत को यथातथ्य और निष्पक्ष भाव से देखना और उसी प्रकार उनका चित्रण करना।''[27]

इन पाश्चात्य विद्वानों के अलावा फ्रायड और मार्क्स ने यथार्थवाद के चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। उन्होंने समाज में शोषक और शोषित ये दो वर्ग माने हैं और इन दोनों के संघर्ष का कारण 'अर्थ' माना है। मनुष्य की यौन संतुष्टि के बिना उसका विकास असंभव है, इस फ्रायड के कथन का प्रभाव भी यथार्थवाद पर पड़ा है। अतः भारतीय और पाश्चात्य दोंनों विचारकों ने अपने अपने विचार यथार्थवाद के संदर्भ में प्रस्तुत किये है और उनका समर्थन भी किया है।

यथार्थवाद से भेद :-

यथार्थवाद जन्म से लेकर आज तक विभिन्न विकास आयामों से गुजरा है। वास्तव में यथार्थवावद एक जीवन दृष्टि है। इसी जीवन दृष्टि से प्रेरित होकर नाटककार अपने नाटकों में यथार्थ का चित्रण करता है। लेखकों और विद्वानों ने भी इस दृष्टिकोण के आधार पर यथार्थवाद के कई प्रकार प्रचलित किए है। इनमें 1) ऐतिहासिक यथार्थवाद, 2) मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, 3) आलोचनात्मक यथार्थवाद, 4) समाजवादी यथार्थवाद, 5) आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, 6) प्रकृतिवाद, 7) राजनीतिक यथार्थवाद, 8) सामाजिक यथार्थवाद ।

1) ऐतिहासिक यथार्थवाद :-

ऐतिहासिक यथार्थवाद तत्कालिन घटित सामाजिक परिस्थितियों को उभारकर रखने के प्रति आग्रही होता है। वह तत्कालिन समाज के ऐसे चरित्रों की रचना करता है जिससे वर्तमान समाज को प्रेरण मिले और समाज दोषों से बच सके। वह समाज की दुर्बलताओं को भी बताता है ताकि वर्तमान समाज अपने में कुछ परिवर्तन करें। ''ऐतिहासिक यथार्थ की एक मात्र कसौटी है लेखक की निष्पक्ष दृष्टि का होना। यदि लेखक ऐतिहासिक यथार्थ का चित्रण करते समय अपने वैयक्तिक आग्रहों से ऊपर नहीं उठ पाया तो उसकी रचना में विकार का आना स्वाभाविक है।''[28] देशकाल का अन्तर आ जाने के कारण यथार्थवाद ही ऐतिहासिक यथार्थवाद कहा जाने लगा है। साहित्य में यथार्थवाद और ऐतिहासिक यथार्थवाद में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। ''ऐतिहासिक यथार्थवाद तिथियों, नामों एवं घटनाओं की सत्यता के प्रति अधिक आग्रहशील नहीं रहता पर तत्किालिन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन के यथार्थ चित्रण पर बल देता है।''[29] ऐतिहासिक यथार्थवाद से वर्तमान समाज अतीत का गौरव समझ ले और अपने समाज की दुर्बलता को भी समझ ले।

2) मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद :-

हिंदी में अज्ञेय, डॉ. देवराज, और इलाचंद्र जोशी प्रमुख रूप से मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी रचनाकार है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद व्यक्ति की अन्तर्गत बौद्धिकता एवं भावात्मकता का अधिक चित्रण करता है। उसके बाह्य जगत को विशेष महत्त्व नहीं देता। वह रहस्यों का यथोचित उद्घाटन करता है। यह यथार्थवाद मानव के अवचेतन मन को सभ्यता, संस्कृति एवं श्लीलता को रखने का आग्रह करता है। इसलिए अनुशासन का पालन करने के लिए भी कहता है। ''मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्तित्त्व की सारी अन्तर्विरोधी प्रवृत्तियाँ, जटिल संवेदनाओं, विषम मन:स्थितियों का वैविध्य चित्रित किया जाता है।''[30] अत: मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद व्यक्ति के उपचेतन एवं अचेतन मन को जटिल एवं विषम ग्रंथियों को सुलझाने का कार्य करता है।

3) आलोचनात्मक यथार्थवाद : -

आलोचनात्मक यथार्थवाद और यथार्थवाद में कुछ ही मात्राओं का अन्तर है। वस्तुतः आलोचनात्मक यथार्थवाद को यथार्थवाद से अलग कहना बड़ा कठीन है। आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकार सामाजिक विकृतियों, कुरूपताओं एवं विषमतओं की कठोर आलोचना करता है। आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकार सुधारवादी होकर भी हमारे सामने सुधारवादी रूप में नहीं आते।

4) समाजवादी यथार्थवाद :-

'समाजवादी यथार्थवाद' यथार्थवादी कला आंदोलन तथा चिन्तन की एक नई मंजिल के विकास का प्रमुख भाग है। यह यथार्थवाद मनुष्य, समाज जीवन तथा उसके यथार्थ को उसकी संपूर्णता में देखने और प्रस्तुत करनेवाली रचनात्मक दृष्टि है। ''सर्वहारा द्वारा की गई क्रांतियों के दौरान नवीन नायक उभरे हैं। उनके वीरता भरे चरित्र और क्रांतिकारी दृष्टिकोण ने नवीन समाज-रचना के लिए जो उत्सर्गपूर्ण संघर्ष किया है। समाजवादी साहित्य और कला उनके चित्रण को प्रमुखता प्रदान करती है और उन स्थितियों को सामने लाती है जो साधारण जनता के मनोबल को उठाने तथा उन्हें वर्गविहीन समाज व्यवस्था की ओर अग्रसर करने में सहायक हैं। उनके लिए साहित्य और कला जन-जीवन की यथार्थ स्थितियों का अविभाज्य अंग है।''[31] समाजवादी यथार्थवाद का मुख्य उद्देश्य समाजवादी समाज के उद्देश्य, गुण एवं उसकी वर्तमान तथा भावी गतिविधियों का मूल्यांकन करना है। समाजवादी यथार्थवाद ''सामाजिक जनक्रांति से अधिक प्रभावित है तथा वास्तविक चित्रण के साथ सामाजिक-संघर्षों के यथार्थ चित्रण पर बल देता है।''[32] समाजवादी समाज की स्थापना करना इसकी प्रमुख विशेषता है।

5) आदर्शोन्मुख यथार्थवाद :-

भारतीय साहित्य में आदर्शवादी प्रवृत्ति रही है। भारतीय परम्परा का आदर्श दर्शन साहित्य में मिलता है। आदर्श और यथार्थ का परस्पर समन्वित रूप ही आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है। इसमें यथार्थ चित्रण करते हुए अन्त में आदर्श की प्रतिष्ठा की जाती है। आदर्शवादी साहित्यिकों ने यथार्थ के साथ यह

समझौता किया है। आदर्शोन्मुख यथार्थ जीवन के कुत्सित, बीभत्व, दुर्बल, असंगत, विडम्बनापूर्ण पक्ष का चित्रण करते हुए भी मानव के सामने ऐसे आदर्श की स्थापना करता है जिसमें आशा और विश्वास का संचार हो जाता है।

6) प्रकृतिवाद :-

प्रकृतिवादी रचनाकार मनुष्य के स्वार्थ, निर्दय और कामुक प्रवृत्ति का चित्रण करते है। प्रकृतिवाद किसी धार्मिक परम्परा में विश्वास नहीं रखता है। वह मनुष्य की कुण्ठित भावना, निराशा, अस्वच्छता एवं गन्दगी का चित्रण करता है। यह मनुष्य को नियतीवादी तथा निराशावादी बनाता है। प्रकृतिवाद के मूल में डार्विन का मनुष्य का विकासवाद का सिद्धांत है। यथार्थवाद से प्रेरित होकर ही नाटक जीवन का वास्तविक चित्रण करता है। इस चित्रण में कलात्मक संरचना का होना आवश्यक है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ''कला के क्षेत्र में यथार्थवाद एक ऐसी मानसिक प्रवृत्ति है जो निरन्तर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और रूपायित होती रहती है।''[33] इसलिए कहा जा सकता है कि यथार्थववाद एक जीवन दृष्टि है। इसी दृष्टि से प्रेरित होकर नाटककार यथार्थ का चित्रण करते समय नाटक के सभी रूपों का भी ध्यान देता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, मनोदशा, वैज्ञानिकता तथा सामाजिक पृष्ठभूमि को भी वह ध्यान में रखता है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों के मिलकर ही सामाजिक वातावरण निर्मिति होती है। इनके कारण हमारे संस्कारों की सृजना होती है।

7) राजनीतिक यथार्थवाद :-

सामाजिक यथार्थवाद का प्रमुख अंग है राजनीतिक यथार्थवाद। इसमें राष्ट्रीय जीवन की राजनीति की समस्याएँ, राजनीति का विकृत स्वरूप उसकी शोषक नीति, जनसामान्य पर राजनीति का प्रभाव, राजनेताओं की दुर्बलता, आदर्श युद्ध के दुष्परिणाम, अमीर लोगों का राजनीति पर बढ़ता प्रभाव, पूँजीपतियों के साथ राजनेताओं की साँठ-गाँठ, समाज में होनेवाले दंगे तथा उनका दुरूपयोग

आदि का विस्तृत चित्रण इस यथार्थवाद में आता है। समाज के सम्पूर्ण राजनीतिक यथार्थ परिवेश का चित्रण यथार्थ दृष्टि से राजनीतिक यथार्थवाद में होता है। राजनीतिक यथार्थवादी रचनाकार केवल राजनीति को दर्शाता है। वह यह नहीं बताता की राजनीति कैसी होनी चाहिए ? रचनाकार केवल राजनेता का आडम्बर, षड़यंत्र, राजनीतिक पार्टियों की आपसी खींचातानी, जनता को गुमराह करने की नीति आदि का यथार्थ दृश्य मानव समाज के सामने रखता है और व्यक्ति के सामने प्रश्न उपस्थित करता है। इससे समाज का पाठक राजनीति का असली रूप जान जाता है। राजनीति से समाज कभी अलग नहीं रह सकता। इसलिए राजनीतिक यथार्थवाद सामाजिक यथार्थवाद के निकट है।

8) सामाजिक यथार्थवाद :-

समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, साम्प्रदायिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक परिवेश तथा समस्याएँ ही सामाजिक यथार्थ बनती है। ''सामाजिक यथार्थवाद का अर्थ है समाज की वास्तविक अवस्था का यथार्थ चित्रण।''[34] सामाजिक यथार्थवादी साहित्यकार समाज और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों को दर्शाता है। समाज के आचार-विचारों तथा उसकी राष्ट्रीय आर्थिक एवं नैतिक अवस्थाओं का मूल्यांकन तत्कालिन परिस्थितियों के आधारपर करता है। समाज में स्थित रूढियाँ, परम्परों का भी वह चित्रण करता है। सामाजिक विषमता, दुर्बलता, अन्धविश्वास, धार्मिक मान्यताओं का यथार्थ दृश्यों का चित्रण करता है। जनसामान्योंकी पीडा तथा दु:खों को आवाज देने का कार्य सामाजिक यथार्थवादी रचनाकार प्रतिनिधि के रूप में करता है। इसमें आत्मनिष्ठ पूर्वग्रह रोमांच तथा आदर्शवाद को कोई स्थान नहीं है। यह यथार्थवाद प्रकृतिवाद की तरह निराशावादी नहीं है। ''सामाजिक यथार्थवाद वस्तुत: प्रतिनिधि व्यक्तित्व अथवा चरित्र को सहज स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार चरित्र वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हुए भी वह अपने विशेषता अक्षुण्ण रखता है।''[35] सामाजिक यथार्थवाद आदर्शवाद के विरोधी है। अत: वह मनुष्य की हीनता तथा कु रूपता का चित्रण करता है। वह सुंदर अंश को छोड़ असुंदर अंश का ही अधिक चित्रण करता है।

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि यथार्थवाद साहित्य में भेद एक महत्वपूर्ण विचारधारा एवं कला आंदोलन है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है, उसमें मनुष्य की धार्मिक और नैतिक मान्यताओं का विरोध कर मनुष्य का भौतिक परिवेश में यथार्थ चित्रण करना है। यथार्थवाद का लक्ष्य समाज की दुर्बलताओं की ओर ध्यान आकर्षित करने का होता है। उसकी दृष्टि भविष्यपर नहीं, वर्तमान पर अधिक होती है।

भीष्म साहनीजी के नाटकों में भी यथार्थवाद का चित्रण अधिक दिखाई देता है। यदि भीष्मजी के ''हानूश'' और ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटकों में चित्रित सामाजिक और राजनीतिक यथार्थवाद को देखना है।

'हानूश' और 'कबिरा खड़ा बज़ार में' में सामाजिक यथार्थवाद :-

भीष्मजी यथार्थवादी रचनाकार है। उनके 'हानूश' और 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटकों में समाज के विभिन्न रूपों का यथार्थ दर्शन होता है। उनके इन नाटकों में निम्नांकित पहलूओं का दर्शन अधिक दिखाई देता है।

''हानूश'' में सामाजिक यथार्थ :-

1) गरीबी की समस्या :-

'हानूश' नाटक गरीबी की यथार्थ दशा का चित्रण प्रमुखतासे करता है। हानूश एक सामान्य कुफ्लसाज होकर भी वह बड़ा काम करता है। लेकिन उसके काम से उसकी पत्नी को बहुत यातनायें सहनी पड़ी है। उसकी बजहसे ही हानूश अपना काम करने में अधिक वक्त दे सका है। हानूश की पत्नी घुस्से में पादरी देवर के सामने हानूश की शिकायत करती है। लेकिन वह हानूश को कम कात्या कोही अधिक समझाता है। वह कहता है कि जब हानूश घड़ी बनाने में सफल होता तो तुम्हारी सारी परेशानियाँ अपने आप दूर हो जायेगी। महाराज तुम्हारे परिवार को मालामाल करेंगे। तभी कात्या अपने गरीबी की ओर ध्यान उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए कहती है - ''पिछले दस साल से यही सुन

रहीं हूँ। (तड़पकर) मैं बहुत उपदेश सुन चुकी हूँ। घर में खाने को न हो तो मैं अपनी बच्ची को कैसे पालूँ? मुझे सभी उपदेश देते रहते हैं। मेरा बेटा सर्दी में ठिठुकर मर गया। जाड़े के दिनों में सारा वक्त खाँसता रहता था। घर में इतना ईंधन भी नहीं था कि मैं कमरा गर्म रख सकूँ।''[36] वह यह भी कहती है कि भूखे पेट मैं अपने बच्चों को कैसे संभालु? हानूश का भी अपने परिवावर की ओर ध्यान नहीं है। उसे भी घड़ी बनाने के लिए दिये जानेवाली माली इमदाद गिरजेवालों ने बंद कर दि हैं।

हानूश की घड़ी बन जाने पर उसे अनेकों शुभकामनायें मिलती है। जब महाराज के द्वारा उसे नगरपालिका में आने के लिए न्योता दिया ज़ाता है। तब हानूश के पास खुद के अच्छे कपडें भी नहीं होते। वह कपडे अपने साथियों से माँगकर लाता है और पादरी भाई से जुते माँगकर ले आने के लिए कहता है। इससे हानूश और उसके परिवार की गरीबी का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है। जो मानव के सृजनशील व्यक्तित्त्व में बाधाएँ बनता रहता है।

2) स्वार्थ से पीड़ित व्यवस्था :-

हानूश को घड़ी बनाने के काम में पहले गिरजेवाले मदद करते थे। लेकिन हानूश की असफलता देखकर वे उसको मिलनेवाली माली इमदाद बन्द कर देते हैं। नगरपालिकावाले हानूश को इस काम में मदद दे देते है। जब हानूश की घड़ी बन जाती है तब वे घड़ी को नगरपालिका पर लगाने की बात करते हैं। लेकिन गिरजेवाले भी चाहते हैं कि घड़ी गिरजेपर लगे । तब नगरपालिका सदस्य जान कहता है कि, ''जितनी देर घड़ी नहीं बनी थी उतनी देर तो किसी को ख्याल ही नहीं आया कि उसका मालिक कौन होगा, अब तो बन गई है, तो सभी उसे हथियाने के लिए लपक रहे हैं।''[37] घडी को हासिल करने के लिए वे नगरपालिका के सदस्य हानूश की बेटी यान्का का ब्याह नगरपालिका सदस्य टाबर के बेटे के साथ करने की भी बात करते हैं। नगरपालिका सदस्य स्वार्थ से इतने पीड़ित है कि वे एक दूसरे से बात करते समय घड़ी नगरपालिका पर लगेगी तो बादशाह सलामत नाराज होंगे। इस बात पर शेवचेक कहता है, '' नाराज हो गए तो देख लेंगे क्या करना होगा। इस वक्त तो घड़ी लगवाओ और

जिस दिन बादशाह सलामत यहाँ तशरीफ लाएँ, सैंकड़ों दस्तकारों - सनअ तकारों को इकठ्ठा करो जो उनका स्वागत करें।''[38] इन बातों से समाज में बढ़ते स्वार्थ की ओर संकेत किया गया है। इस नाटक के चरित्र से पता चलता है कि सर्वत्र स्वार्थ की भावना व्याप्त है।

3) कारीगर की दयनीय स्थिति :-

प्रस्तुत नाटक में हानूश एक ऐसा कारीगर है जो अपना काम दिल लगाकर करता है। उसे इस बात का भी एहसास नहीं है कि अपने घर की परिस्थिति क्या है। वह न अपने पत्नी को खुश रख सका, न खुद सुखी रहा। फिर भी वह अपनी मेहनत के बल पर आखिर तेरह साल बाद घड़ी बनाने में कामयाब हुआ। हानूश को घड़ी बनाने में अनेकों कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। महाराज भी हानूश की कामयाबी की सराहना करते हैं। उसपर खुश होकर उसे एक हजार सोने की मोहर देते हैं और दरबारी का रूतबा भी देते है। साथ ही साथ हानूश और दूसरी घड़ी न बनवाये इसलिए यह हुक्त देते हुए कहते हैं कि ''हमें नगरपालिका से कही जादा एतबार हानूश कुफ्लसाज पर है। इस आदमी को और घड़ियाँ बनाने की इजाजत नहीं होगी। इस हुक्म पर अमल करवाने के लिए --- हानूश कुफ्लसाज को उसकी आँखों से महरूम कर दिया जाएँ। उसकी दोनों आँखें निकाल दी जाएँ। उसकी आँखे नहीं होंगी तो और घड़िया नहीं बना सकेगा।''[39] हुसाक महाराज को ऐसे न करवाने की बिनती करता है लेकिन महाराज नहीं मानते। हानूश की स्थिति इतनी दयनिय हो जाती है कि वह घुटनों के बल बैठकर गिडगिडाने लगता है।

एक दिन अचानक हानूश की घड़ी बिगड़ जाती है। शहर का माहोल कुछ बिगड़ जाता है। बड़े वजीर अधिकारी के द्वारा हानूश को बुलावा भेजते हैं। प्रथमत: हानूश कहता है कि मैं आखों के बिना काम नहीं कर सकता। लेकिन बाद में दयनीय और व्यंग्यात्मक शैली में कहता है , ''मैं भी कितना पागल हूँ। अपनी हैसियत को न आज तक समझा, न पहचाना। ऐमिल, तुम ठीक कहते थे कि बादशाह सलामत ने उन्हें अन्धा बनाया है, पर इससे एक दिन तुम्हारी आँखें खुल जाएँगी। तुम्हें स्याह और सफेद

की पहचान आ जाएगी (रूक जाता है, फिर धीमी आवाज में) चलिए साहिब, मैं आपके साथ चलूंगा। मैं आपके पीछे-पीछे, एक वफादार कुत्ते की तरह, आपके कदमों में लोटता हुआ चलूँगा। --- क्योंकि मैंने एक दिन घड़ी बनाई थी।''[40] इसीसे एक कारीगर की दयनीय स्थिति का परिचय होता है।

4) जुल्मी धर्म के रखवाले :-

कात्या और हानूश का मित्र ऐमिल पादरियों की बारे में कुछ बातें कर रहे होते हैं इतने में उन्हें कदमों की आहट सुनाई देती है। जब ऐमिल दरवाजा खोलता है तो उसे फटे हाल हालत में 22-23 वर्ष का युवक दिखाई देता है। पूछने पर पता चलता है कि उसका नाम जेकब है और वह इसलिए डरा है कि उसका पीछा कोई अधिकारी कर रहा है। वह यह भी कहता है कि मैंने एक पादरी का सुअर चुराया था इस कारण वह तीन साल की सजा भी काट चुका है। उसकी बात सुनकर जेकब धर्म के रखवाले पादरी पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि, ''पादरी का सुअर चुराया होगा। किसी किसान का चुराया होता तो इतनी सजा नहीं मिलती। क्या वह किसी पादरी का था?''[41]

हानूश घडी बनाने में कामयाब हो जाता है। महाराज शहर में हानूश की घड़ी देखने के लिए आने वाले हैं इसलिए ऐमिल हानूश को बहुत कुछ समझाता है। इतने में पादरी भाई आते है ज्यों कि बहुत खिन्न और उदास है। हानूश जब उन्हें उदासी का कारण पूछता है तो वे कहते हैं कि नगरपालिका पर लगी घड़ी को लेकर पादरियों के बीच बहुत गरम बहस चलती है। इन नए-नए आविष्कारों में यह बुराई है कि इनसे मन की अशान्ति और झगडे बढते हैं। इससे यह लगता है कि धर्म की रक्षा करनेवाले ही अपने हित के लिए अशान्ति को बढ़ावा देने में कुछ कम नहीं है।

5) कला की अवहेलना :-

भीष्म साहनी के 'हानूश' नाटक का हानूश एक ऐसा कारीगर है जिसे अपने काम की पूर्ती के लिए अनेकों कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। उसे घड़ी बनाने के काम के लिए आर्थिक मदद मिलवाने के लिए अनेक प्रयास करने पड़े। हानूश जब अपने काम में कामयाब हो जाता है तभी उसे

राजनीतिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। उसे महाराज के द्वारा मान-सम्मान मिला, साथ ही साथ उसकी आँखें भी निकलवा गई ताकि वह दूसरी घड़ी न बना सके। महाराज ने कलाकार को मान-सम्मान दिया लेकिन उसकी कला पर अंकुश लगाकर कला की अवहेलना की है।

✻ 'कबिरा खड़ा बजार में' में सामाजिक यथार्थ :-

1) गरीबी की समस्या :-

"कबिरा खड़ा बजार में" नाटक का प्रमुख पात्र कबीर है। कबीर एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। समाज के भय और लोकलज्जा के कारण ब्राह्मणी अपने सद्य:जात शिशु को एक तालाब के किनारे छोड गयी। नवविवाहित जुलाहा दम्पति नूरा और नीमा ने उसे देखा और दयावश उठा लिया। अपने घर लेकर आये और उसे बड़े लाड-प्यार से पाला, जो एक बच्चे को अपने माँ-बाप से मिलता है।

जुलाहे के घर में पला कबीर जब कुछ बड़ा हुआ तो उसे भी खड्डी पर काम करने, कपडा बुनने तथा बुने कपड़े के थान को बाजार में बेचने की शिक्षा दी गयी। कबीर खड्डी पर काम तो करता, पर उसका मन उस काम में पूरी तरह नहीं लगता था। आये दिन हर किसी से झगड़ा करनेवाली बातें करता था। उसकी हरकतों से नूरा तो तंग आया था। अनेक कठिनाईयाँ झेलकर उसे नीमा-नुरा ने पाला था। लेकिन उसकी हरकतों से तंग आकर नुरा कहता है कि, "घर में खाने को अन्न का दाना नहीं, इधर लड़का आवारा हो गया। हमारी जान लेकर रहेगा।"[42] इसीसे कबीर के घर की गरीबी की दशा का पता चलता है। कबीर के सारे दोस्त भी गरीबी की दशा से जूझते थे।

2) धर्म का स्वरुप :-

धर्म और समाज का घनिष्ट संबंध है। प्रस्तुत नाटक में कोतवाल और कायस्थ की बातों से पता चलता है कि धर्म में भी अनेकों भेद हैं। जब कोतवाल कायस्थ से कहता है कि आपके यहाँ मठ-मंदिर जात-पात बहुत है, हम तो इन्हें समझ नहीं पातें। इस पर कायस्थ कहता है कि, "बहुत है

मालिक, ब्राह्मणों की ही 108 जातियाँ हैं। एक-एक जाति की फिर उपजात है, हजारों जाते हैं।''[43] हर जाती का परिचय कराते हुए कायस्थ कहता है, ''सफेद टीका लगानेवाले वैष्णव है, हुजूर। और लाल टीका लगानेवाले देवी की पूजा करते हैं, वे शाक्त है।''[44] कोतवाल के पूछने पर वह कहता है कि सीधे रूख टीका लगानेवाले शैव होते है। एक रेखा वे लगाते हैं जो केवल ब्रह्म को मानते है, दो रेखावाले जीवन और बह्म दोनों को मानते है और तीन रेखावाले जीव, ब्रह्म और प्रकृति को मानते हैं। कायस्थ तिलक लगानेवालों का परिचय कराते हुए कहता है कि वैष्णव लोग चन्दन का और शैव लोग विभूति का तिलक लगाते हैं। इसीसे पता चलता है कि धर्म का स्वरूप बहुत विस्तृत है।

3) जातीभेद :-

'कबिरा खड़ा बजार में' स्थित कबीर किसी निरीह, निरपराध और दीन-हीन व्यक्ति पर अत्याचार होते नहीं देख सकता। अत्याचार होते देख एक ओर वह अत्याचारी का विरोध करता है और दूसरी ओर निरीह व्यक्ति के प्रति उसके हृदय से करूणा का स्रोत प्रवाहित होने लगता है। महन्तजी की शोभायात्रा के मार्ग पर खडे होने वाले अछूत बालक को छुआछूत की भावना के कारण कोडे मारे जाते हैं। लेकिन कबीर उसे बचाकर भागने कहते है। कबीर सभी धर्म के स्वरुप पर टिका करते हैं, तो उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इसलिए कबीर की माँ नीमा कबीर से कहती है कि जब उन्हें कोई जात पूछे तो वे अपनी जात ब्राह्मण कहा करे ताकि कठिनाईयों से वे सहीसलामत बच सकते हैं।

कबीरजी के समय नाई के मुँह से 'या अल्लाह' निकलने पर ब्राह्मण यजमान भाग खड़ा होता है और उसे गालियाँ देता हुआ धोती समेत गंगाजी में कूद पड़ता है। मंदिर का पुजारी पहले रैदास का कवित्त सून उसे मंदिर में आकर आरती करने का न्योता देता है पर जब उसे पता चलता है कि रैदास चमार है तो उसे डंडे मारकर भगा देता है। इससे जातिभेद और छुआछूत की सामाजिक यथार्थ दशा का परिचय होता है। इतना नहीं जब कबीरजी को एक ज्ञानी महाराज मिलते है तो उन्हें कबीर कहते है, ''महाराज, नीच जात का आदमी वेद कहाँ पढ़ सकता है। वह तो उसे हाथ तक नहीं लगा सकता।

उसके तो छूने से ही वेद-पुराण भ्रष्ट हो जाते हैं।''[45] कबीर की इन्हीं बातों से जातिभेद का सामाजिक यथार्थ उभरकर सामने आता है।

4) भ्रष्ट और हृदयहीन अफसरशाही :-

'कबिरा खड़ा बजार में' प्रस्तुत नाटक में चित्रित अफसर हृदयहीन और भ्रष्ट है। महन्त जी की शोभायात्रा के समय एक निरीह बच्चा बीच में आने के कारण उसे एक साधु द्वारा कोडे मारे जाते हैं, लेकिन उस बच्चे को छुडाने के लिए कबीर के अलावा कोई नहीं आता। सभी लोग मुल्ला-मौलवी, महन्त और कोतवाल से डरते हैं। कोई धर्म के नाम पर हृदय हीन है तो कोई धर्म के रखवालों की मदद करने के लिए भ्रष्ट और हृदयहीन है। कोतवाल ऐसा व्यक्ति है जो मुल्ला-मौलवी तथा पुजारी-महन्तों सबका आदर करता था, सबसे शिष्टाचारपूर्वक बातें करता था, सबको खुश करता था तथा उनके द्वारा सौंपे गये गलत काम में हाथ भी बटाता है। महन्त कोतवाल को मठ की जमीन के सामने होनेवाली डोमों की बस्ती को हटाने के लिए रिश्वत देते हैं। कोतवाल रिश्वत लेकर डोमों की बस्ती उजाड़ने का आश्वासन भी देता है। इस प्रकार गरीबों के तथा नीच जातीवालों के रखवालें भी अपनी हृदयहीनता तथा भ्रष्ट प्रवृत्ति के कारण गरीबों के घर भी उजाड़ने के लिए हिचकिचातें नहीं।

''हानूश'' और ''कबिरा खड़ा बजार में'' राजनीतिक यथार्थ :-

भीष्मजी के ''हानूश'' और ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटकों में राजनीति के विभिन्न रूपों का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। उनमें चित्रित राजनीतिक यथार्थ के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का अधिक दर्शन भीष्मजी ने इन नाटकों में दिखाई देता है।

''हानूश'' में चित्रित राजनीतिक यथार्थ :-

1) फायदे के लिए गरीबों का इस्तमाल :-

''हूनश'' नाटक में हानूश नामक कुफ्लसाज हैं जो एक गरीब कारागीर है। वह पिछले 10-12 साल से घड़ी बनाने व्यस्त है। उसे घड़ी बनाने के लिए पहले गिरीजेवाले मदद करते हैं लेकिन

उसकी असफलता देखकर वह उसे मदद देना बंद करते है। उसके बाद नगरपालिकावाले हानूश को घड़ी बनाने के लिए मदद करते हैं और उसी दरम्यान वह घड़ी बनाने में सफल होता है। हानूश की सफलता देखकर नगरपालिका के सदस्य हानूश का अपने व्यापार के लिए पूरा फायदा उठाना चाहते हैं। इस संदर्भ में बातचित करते समय टाबर अपने नगरपालिका के साथियों से कहता हैं कि, ''हानूश को अपने साथ रखो। नगरपालिका उसे एक बाड़ा बनवा दे, पाँच-छं: दस्तगार उसके साथ काम करने के लिए रख दे। उसका वजीफा बाँध दे और कहे कि लो भाई, तुम यहाँ चैन से बैठो और दूसरी घड़ी बनाओ।''[46] साथ ही साथ टाबर यह भी कहता है कि, ''हम वह घड़ी दिसावर में बेच देंगे। यहाँ से घड़ी बनवाएँगे और दिसावर में अच्छे मुनाफे पर बेचेंगे। युरोप के नगर-नगर में घडियों की माँग है। हम व्यापारी लोग है। हमें घड़ी की नुमाईश से नहीं, मुनाफे से मतलब है। और फिर जब दस आदमी घड़ियाँ बनाना सीख गए तो यहाँ पर भी घड़ी लगावा लेंगे। व्यापारी के लिए क्या मुश्कित है?''[47] इस हानूश जैसे गरीब लोगों का राजनैतिक व्यापारी लोग फायदा उठाना चाहते हैं। वे केवल अपने फायदे के लिए हानूश को इस्तमाल करना चाहते है।

2) स्वार्थ से प्रेरित राजनीतिक यथार्थ :-

हानूश एक सच्चा कारीगर है। वह जानता है कि वह गरीब है लेकिन धन से मन से नहीं। इसलिए वह अपने ध्येय से दूर नहीं जाना चाहता। अनेक परेशानियों का सामना करता है और अपने घड़ी बनाने के ध्येय को पूरा करता है। घड़ी बनाने में सफल होता है लेकिन स्वार्थ से पीड़ित राजनीतिक लोग उसका पूरा फायदा उठाना चाहते है। हानूश की सफलता का फायदा अपने व्यापार में मुनाफा बढ़ाने के लिए, तो कोई बादशाह के दरबार में नुमाइन्दगी मिलाने की सोचता है। केवल स्वार्थभावना से प्रेरित नगरपालिका सदस्य जार्ज, जान से कहता है कि हानूश की एक जवान बेटी है। उसका ब्याह टाबर के बेटे के साथ करवा दो। वह अब कुफ्लसाज न होकर अब दरबारी बननेवाला है। साथ ही साथ वह यह भी कहता है कि, ''हानूश फिर घड़ी साजों की जमात में शामिल हो जाएगा। वह फिर अपने पादरी भाई की भी नहीं सुनेगा, वह अपनी बेटी की, और अपने दामाद की सुनेगा।''[48]

3) राजनीतिज्ञ में साँठगाँठ :-

गिरीजेवाले लोग हानूश की असफलता देखकर उसका वजीफा बंद करते हैं। उसका पूरा फायदा नगरपालिकावालें लोग उठाते हैं। वे हानूश को घड़ी बनाने के काम के लिए, आर्थिक मदद देते हैं। घड़ी बनाने में हानूश सफल हो जाता है। घड़ी बनाने की सफलता सुनकर नगरपालिका के सदस्य घड़ी नगरपालिका पर लगाने की सोचते है तो लाट पादरी घड़ी को गिरजे पर लगाने का ऐलान करता है। आखिर घड़ी नगरपालिका पर लगाई जाती है। जान, जार्ज, टाबर, शेवचेक, हुसाक सभी यह भी तय करते हैं कि यदि बादशाह सलामत तशरीफ लाएँ तो हम कहेंगे कि आपके स्वागत के लिए घड़ी लगाई गई है। इस प्रकार राजनीतिज्ञ में साँठ-गाँठ होती है।

4) धनलोलुप राजनीतिज्ञ :-

हानूश के घड़ी बनाने में सफल होने पर सभी राजनीतिज्ञ उसकी घड़ी के जरीए अपना धन अधिक किस प्रकार बने इस पर सोचना शुरू करते है। इसी बीच टाबर हानूश के साथ पाँच-छः दस्तकार देकर और घड़ी बनाने की और युरोप के साथ व्यापार करने की बात कहता है। वह यह भी कहता है कि इससे मुनाफा बहुत होगा। तो जान तीन-चार आदमी मिलकर घड़ीसाजों की एक जमात बनाने की सोचता है। जार्ज तो कहता है कि हानूश की बेटी और टाबर के बेटे की शादी करवा दो। इससे हानूश अपना बन जायेगा। जब जान जार्ज को बड़ी दूर की सोचने की बात करता है तो जार्ज कहता है, "तुम्हीं तो कहते हो कि व्यापारी को दूर की सोचनी चाहिए। और मैं तो आज से दो सौ साल की भी सोच सकता हूँ। तब न गिरजे होंगे, न राजे होंगे। चारों ओर, व्यापारी-ही-व्यापारी होंगे। तब सभी की बेटियाँ व्यापारियों से ब्याही जा चुकी होंगी। हर बात में व्यापारियों की, पैसे वालों की चलेगी।"[49]

5) राजनीति में महाराज का अधिपत्य श्रेष्ठ :-

हानूश की घडी बनाने की सफलता पर महाराज खुश होते हैं उसे एक हजार सोने की मोहरे देने का आदेश देते हैं और दरबारी का पद भी देते है। साथ ही साथ महाराज यह भी कहते है कि अब

हानूश पर कड़ी निगरानी रखनी होगी। ताकि वह कोई दूसरी घड़ी न बनवाये। हानूश महाराज से कहता है कि दूसरी घड़ी बनाने का इसका कोई इरादा नहीं है। महाराज उसे इस बात पर पूछते हैं कि तुमने हमसे पहले क्यों नहीं पूछा ? कल तुम कोई दूसरी घड़ी बनाओगे और उसीसे भी यहीं कहोगे। हमें तुम पर विश्वास नहीं है। तुम्हें और घड़ियाँ बनाने की इजाजत नहीं होगी और बात पर अमल के लिए महाराज हानूश की आँखें निकालने का हुक्म देते है। इस प्रकार राजनीति में महाराज अपना अधिपत्य सिद्ध करते हैं। इससे यही पता चलता है कि राजनीति में न केवल कलाकार बल्कि उसकी कला भी महाराज के सामने घुटने टेक देती है।

हानूश की घड़ी जब बन्द हो जाती है तब महाराज के अधिकारी हानूश को घड़ी की दुरुस्ती के लिए ले जाना चाहते है। अपनी आँख न होने का कारण हानूश बताकर बात टालना चाहता है। लेकिन अधिकारी हानूश को बताता है कि महाराज बहुत नाराज है। वह घड़ी अब रियासत की है। वह हानूश को इस बात का एहसास भी दिलाता है कि सरकार घड़ी की देख-रेख के लिए वजीफा देती है। हानूश इन बातों को सुनकर कहता है कि, "मैं भी कितना पागल हूँ। अपनी हैसियत को न आज तक समझा न पहचाना। --- चलिए साहिब, मैं आपके साथ चलूँगा। मैं आपके पीछे-पीछे, एक वफादार कुत्ते की तरह, आपके कदमों में लोटता हुआ चलूँगा।--- क्योंकि मैंने एक दिन घड़ी बनाई थी।"[50] इससे यही पता चलता है कि महाराज की नाराजगी कलाकार की नाराजगी से अधिक महत्वपूर्ण है। इसे दूर करना एक वफादार, कलाकार को दूर करना अत्यावश्यक है, क्यों कि राजनीति में महाराज का स्थान सर्वश्रेष्ठ है न कलाकार का।

"कबिरा खड़ा बजार में" में चित्रित राजनीतिक यथार्थ :-

1) धर्म और राजनीति का गहरा संबंध :-

धर्म और राजनीति का गहरा संबंध बहुत पुराने जमाने से चलता चला आ रहा है। मुल्ला और मौलवी ही मजहब और कौम की सबसे बड़ी खिदमत करते हैं। उन्हीं की आश्रय में राज़नीति

पलती है। मौलवी कोतवाल से कबीर की शिकायत करता है और कोतवाल को भडकाते हुए कहता है कि, ''आपके रहते हुए किसकी मजाल कि दीन की तौहीन करें? आप यहाँ पर दिल्ली शहनशाह के ही नुमाइन्दा नहीं है, आप दीन के भी नुमाइन्दा है, आप चूप रहेंगे तो लोग कहेंगे कि यहाँ का राजा चूँकि हिन्दू है इसलिए दीन के खिलाफ कोई कुछ भी कहले, कोतवाल कुछ नहीं कर सकता।''[51] मौलवी की बात सुनकर कोतवाल उसे कहता है कि, ''मजहब के नाम पर सल्तनतें बनती है, और सल्तनतों के साये में मजहब पनपते हैं, हाकिम की तलवार दीन की खिदमत करती है।''[52] जब महन्त कोतवाल से डोमों की बस्ती हटाने की बात करते है तो कोतवाल उन्हें आपकी इस फरमाईश के बारे में सोचना पडेगा, जाँच-पड़ताल करनी पडेगी कहता है। इस प्रकार तत्कालिन शासक समझते थे कि उन्हें एक ओर अपनी सल्तनत का विस्तार करना है, अपनी राजनीतिक शक्ति सुदृढ बनानी है और दूसरी ओर धर्म का प्रसार करना है। उस समय भी धर्म, मजहब के नाम पर लोगों की भावनाओं से खिलवाड कर उन्हें उकसाया-भडकाया जाता था और आज भी ऐसा ही हो रहा है।

2) रिश्वतखोर और धनलोलुप राजनीतिज्ञ :-

राजनीति का और रिश्वत का एक दूसरे से संबंध सा जुड गया है। चाहे व राजनीतिज्ञ ऐतिहासिक हो या वर्तमानकालिन। महन्त जब कोतवाल से यह बात बताते है कि मठ की जमीन के ऐन सामने नीच लोगों की डोमों की बस्ती है। उन डोम-चमार की बस्ती को वहाँ से हटा दिया जाय। कोतवाल महन्त की बात सुनता हैं उन्हें इस बात का आश्वासन देकर रिश्वत के रूप में भारी धनराशी भी हासिल करता है। कोतवाल मुल्ला महन्त तथ लोगों को सभी को अपने पक्ष में रखना चाहता है सबका आदर करता है। सबसे शिष्टाचारपूर्वक बातें करता है और गलत काम करने के लिए रिश्वत का आधार भी लेता है। राजाश्रय तथा राजनीति का कोतवाल पूरा फायदा उठाता है।

3) राजनीति का विकृत रूप :-

राजनीति का आधार प्राप्त होने के कारण कोतवाल छोटे से दायरे में भी उसी शान और दबदबे से रहता था जैसे कोई राजा, मनसबदार या ताल्लुकेदार। वह सब पर रौब जमाता था। वह

समझता था कि शासन करने का गुर है - प्रजा को आतंकित रखना। इसके लिए वह अपराधियों को ही नहीं निरपराधों को भी कठोर दण्ड देता था। उसने गरीब दुर्बल भिकारी को कोडे लगवाये, इसमें उसका अन्त हो गया। उसका अपराध केवल इतनाही था कि वह कबीर के पद गा रहा था। प्रजा को आतंकित तथा प्रजा के मन में भय पैदा करने के हेतु वह भिखारी की लाश को गली-गली घुमाने का आदेश देता है। उस लाश को देखकर लोग कोई ऐसा कार्य न करें जिससे शासन कार्य में बाधाएँ पैदा हो और दहशत फैलें।

मौलवी कबीर के बारे में उल्टा-पुल्टा कुछ भी कोतवाल को बताते हैं और कबीर को दण्डित करने कहते हैं। तो कोतवाल कहता है, ''सूनो मौलवी, यह शहर हिन्दुओं कार मुकद्दस शहर है। यहाँ का राजा हिन्दू है। वह लोदी बादशाह को खिराज देता है। अगर मजहब के नाम पर इस आदमी को पकडकर सजा देंगे तो किसी को बुरा लग सकता है।''[53] इस प्रकार कोतवाल राजनीतिक हित को ध्यान में रखकर ही कदम उठाना चाहता है। मौलवी फिर भी कबीर की शिकायत करते हैं तो कोतवाल मुसाहिब से बताते हैं कि, ''जरूरत इस बात की नहीं कि कबीर को सजा दी जाये। जरूरत इस बात की है कि उसकी बात सुननेवालों के दिल में दहशत फैल जाये। अगर हम कबीर को सजा देंगे तो उसकी बात सुननेवालों के दिल में उसके लिए हमदर्दी पैदा होगी। इसी को हिकमत कहते हैं।''[54] कोतवाल कबीर को सजा देने की बजाय उसके कवित्त सुननेवालों के दिलों में डर पैदा करना चाहता है। इससे सच बोलनेवाले कबीर की बातें लोग न सुन सके। लोग हमेशा सच्चाई से दूर रहे यही आज के भी राजनीति का भी विकृत रूप है।

4) राजनीतिज्ञ (बादशाह) का रौब और दबदबा :-

राजनीतिज्ञों का हमेशा अपने सभी कर्मचारियों पर रौब और दबबा रहता है। बादशहा उसके कानों पर ऐसी कोई खबर न पहुँचे जिससे वह रूष्ट हो जाये इसका सभी ध्यान देते हैं। राजनीतिज्ञ (बादशाह) किस प्रकार प्रसन्न रह सके इसका सभी ध्यान रखते हैं। इसलिए वे सबकुछ करना जानते भी हैं और करते भी हैं। जब कोतवाल को पता चलता है कि कबीर के प्रति बादशाह के मन में आदर-

सन्मान का भाव है तो वह कबीरदास और उनके साथियों को रिहा करता है। कोतवाल अधिकारीयों के इस बात की भी चेतावनी देता है कि, जहाँ कबीर और बादशहा की मुलाकात होगी वहाँ, "कुछ गुलाब-केवडा भी छिड़कवा देना। बादशहा सलामत, मुमकिन है, उसे वहीं पर मिलना चाहें। और सुनों बादशहा सलामत को इस बात की खबर नहीं मिलनी चाहिए कि कबीरदास का झोंपडा जला दिया गया था। या उसके साथ किसी किस्म की ज्यादती की जाती रही है। वरना लेने के देने पड़ जायेंगे।"[55] इससे बादशहा तथा राजनीतिज्ञों से प्रेरित लोग हमेशा अपना अस्तित्व टिकाने के लिए हरसंभव प्रयास करते हैं। सभी लोग भी राजनीतिज्ञ का आदर करते हैं उनसे डरते हैं। बादशाह और उसकी सेना के ठहरने, उनके खाने-पीने और अन्य सुविधाओं का पूरा ध्यान रखा जाता है। सभी दरबारी बादशहा की अगवानी करने शहर के बाहर पहुँच जाते हैं। लष्कर के खान-पान के लिए छावनी में रसद पहुँचा दी जाती है। जिस प्रकार बादशाहा की और उसके सभी सेवकों की व्यवस्था ऐतिहासिक युग में की जाती थी उसकी प्रकार आज के युग में भी कोई राजनीति नेता आनेवाला होता है तो सभी लोग उसके इर्दगिर्द घुमते हैं। हर कोई उसी के बारे में सोचता है, उसका ख्याल करता है। लेकिन गरीबों की ओर ध्यान देने के लिए उनके पास समय नहीं होता। राजनीतिक नेताओं का भी रौब और दबदबा होता है, उसी का वह पूरा फायदा उठाते हैं।

"कबिरा खड़ा बजार में" चित्रित राजनीतिक यथार्थ आज के युग में भी दिखाई देता है, वह राजनीतिक यथार्थ ऐतिहासिक है तो आज के युग का यथार्थ आधुनिक यथार्थ है केवल परिस्थितियाँ बदल चुकी है न की भावनाएँ।

संदर्भ

1. शिवकुमार मिश्र, 'यथार्थवाद', पृ.1
2. डॉ. सुरेश सिन्हा, 'हिंदी उपन्यास उद्‌भव और विकास', पृ.23
3. वही, पृ.23
4. वही, पृ.23
5. डॉ. बालकृष्ण गुप्त, 'हिंदी उपन्यास, सामाजिक संदर्भ', पृ.211
6. डॉ. सुरेश सिन्हा, 'हिंदी उपन्यास उद्‌भव और विकास', पृ.23
7. शिवकुमार मिश्र, 'यथार्थवाद', पृ.6
8. मक्खनलाल शर्मा, 'मार्क्सवादी काव्यशास्त्र की भूमिका', पृ.87, 88
9. डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद और प्रो.विश्वनाथ प्रसाद, 'साहित्य का विश्लेषण', पृ. 215
10. वही, पृ. 215
11. डॉ. गणेशन, 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन', पृ.337
12. शिवकुमार मिश्र, 'यथार्थवाद', पृ.142
13. डॉ. त्रिभुवनसिंह, 'हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद', पृ.49
14. डॉ. बालकृष्ण गुप्त, 'हिंदी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ', पृ.209
15. वही, पृ. 208-209
16. वही, पृ. 206
17. वही, पृ. 206
18. वही, पृ. 207
19. वही, पृ. 210
20. डॉ. त्रिभुवनसिंह, 'हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद', पृ.47

21. वही, पृ. 47
22. वही, पृ. 46
23. वही, पृ. 46
24. शिवकुमार मिश्र, 'यथार्थवाद' , पृ.10
25. डॉ. त्रिभुवनसिंह, 'हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद', पृ.47
26. वही, पृ.44-45
27. शिवकुमार मिश्र, 'यथार्थवाद', पृ.141
28. डॉ. त्रिभुवनसिंह, 'हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद', पृ.39
29. डॉ. सुरेश सिन्हा, 'हिंदी उपन्यास उद्‌भव और विकास', पृ.27
30. डॉ. मफत पटेल, 'हिंदी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास', पृ.16
31. मक्खनलाल शर्मा, 'मार्क्सवादी काव्यशास्त्र की भूमिका', पृ.67
32. डॉ. सुरेश सिन्हा, 'हिंदी उपन्यास उद्‌भव और विकास', पृ.29
33. डॉ. त्रिभुवनसिंह, 'हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद', पृ.49
34. वही, पृ.231
35. संपा. धीरेन्द्र वर्मा, 'हिंदी साहित्य कोश', खण्ड 1, पृ.914
36. भीष्म साहनी, 'हानूश', तीसरा संस्करण 1999, पृ.30,31
37. वही, पृ.63
38. वही, पृ.70
39. वही, पृ. 98
40. वही, पृ. 118
41. वही, पृ.51
42. भीष्म साहनी, 'कबिरा खड़ा बजार में', राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली चौथी आवृत्ती-

2000, पृ.13

43. वही, पृ. 25

44. वही, पृ.25

45. वही, पृ. 62

46. भीष्म साहनी, 'हानूश', राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., तीसरा संस्करण 1999, पृ.66

47. वही, पृ.66

48. वही, पृ. 69

49. वही, पृ.69, 70

50. वही, पृ. 118

51. भीष्म साहनी, 'कबिरा खड़ा बजार में', चौथी आवृत्ती - 2000, पृ.34

52. वही, पृ. 34

53. वही, पृ.39, 40

54. वही, पृ. 40

55. वही, पृ. 86